Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 11 | NOVEMBER 2023

हिन्दी साहित्य में नव विमर्शों का विश्लेषण (वृद्ध, विकलांग एवं तृतीय लिंग के संदर्भ में)

डॉ. गोपीराम शर्मा [1] | डॉ. एस. डी. राणा [2]

[1] सह आचार्य, हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान 335001.

[1] सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हरौली, जिला ऊना 177220.

ABSTRACT:

वर्तमान समय के साहित्य में कई विमर्श उभर कर सामने आ रहे हैं। विमर्शों को लेकर साहित्य में एक चेतना जाग्रत करने का कार्य किया जा रहा है। विमर्शों की इसी महत्ता का परिणाम है कि हिन्दी साहित्य में स्त्री और दलित जैसे मुद्दों पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है। अब वृद्ध, विकलांग और किन्नर जैसे विषयों को विमर्श के दायरे में लाया जा रहा है। उत्तर-आधुनिकता की एक प्रवृत्ति विकेन्द्रीयता है। पुराने केन्द्र टूट रहे हैं और नये विषय महत्त्वपूर्ण हो रहे हैं।

वृद्ध या बुजुर्ग हमारे समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है। जब वे अपनी सामाजिक भूमिका निभा चुके होते हैं, पीढ़ी का अंतर बताकर जब घर-परिवार के सदस्य उनकी बात को नकारने लगते हैं। जीवनानुभावों का, विचारधाराओं का जब अनादर होने लगता हैं तो बुजुर्ग अपने को समाज की एक व्यर्थ इकाई समझने लगता हैं। हिंदी साहित्य में वृद्धों की समस्याओं को 'वृद्ध विमर्श' के रूप में उठाया जा रहा है।

विकलांगता दलित और स्त्री समस्या से भी अधिक भयावह है। यह व्यक्ति के मन में हीनता और निराशा भर देती है। विकलांग विमर्श द्वारा विकलांगों में नयी ऊर्जा और चेतना भरने का प्रयास किया जा रहा है। दया- सहानुभूति को छोड़कर उनमें कुछ कर सकने की क्षमता भरना और समाज में उचित स्थान देना, इस विमर्श की मूल चेतना है।

तृतीय लिंग वर्ग भी हमारे ही समाज का हिस्सा है। उनकी समस्याओं से समाज अनभिज्ञ है। एक नयी सामाजिक चेतना से प्रेरित होकर साहित्यकारों ने हिजड़ों के जीवन यथार्थ को नये सिरे से पहचाना और उनके जीवन में आये परिवर्तन को बड़ी संजीदगी से अपनी रचनाओं में उभारा है। हिदी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श अपरिपक्व और पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है। समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है, फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन खुल रहे, विकसित हो रहे समाज ने अभी थोड़ा-सा ही सही, इन्हें स्पेस देना शुरू कर दिया है।

कह सकते हैं कि विमर्शों से किसी के पक्ष में वातावरण बनाने में सफलता मिलती है और समकालीन हिन्दी कवि इसमें सफल हो रहा है।

KEYWORDS:

विमर्श, वर्तमान साहित्य, कविता, परिधि, विकेन्द्रीयता, संस्कृति, उत्तर-आधुनिकतावाद, अभिजात्यवादी, छप्पन तोले करधन, वृद्धावस्था, विकलांगता, शुक्राचार्य, तृतीय पंथी लोग, शिखंडी, नालासोपारा, किन्नोर निवासी।

'विमर्श' शब्द पिछले कुछ वर्षों में बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ है। विमर्श शब्द के लिए अंग्रेजी में consultation या discourse शब्द का प्रयोग किया जाता है। विमर्श के अर्थ बहस, सलाह, परामर्श, संवाद एवं सोच विचार कर वास्तविकता का पता लगाना आदि होते हैं। साहित्य में भी विमर्श महत्त्वपूर्ण होने लगा है। हिन्दी साहित्य का यह समय उत्तर-आधुनिकता का है। इसने विमर्श को प्रश्रय दिया है। वर्तमान में साहित्य में विमर्श उत्पन्न कर चेतना जाग्रत की जाती है।

इस समय कविता कला जीवन के लिए मूल्यों का अनुसरण कर रही है। कला के दूसरे प्रयोजन अब गौण हो गये हैं। साहित्य विभिन्न अस्मिताओं का उद्घाटन करने में लगा है। कविता द्वारा समाज बदलने का दावा कवि कर रहा है- "कविता / हर ऐसी जगह मौजूद होती है / जहाँ आदमी हो / और जिन्दगी बदलने की छटपटाहट मौजूद हो / कविता आदमी होने का अहसास भी है / और जिंदगी बदलने का माद्दा भी।"[1]

साहित्य को अस्त्र बनाकर समाज की बेड़ियों पर प्रहार किया जा रहा है। हर मुद्दे पर बहस खड़ी की जा रही है। कवि समझता है कि मनुष्य के पास समय कम है और कार्य बहुत करना शेष है-

"वक्त बहुत कम है / इसलिए कविता पर बहस / शुरू करो / और शहर को अपनी ओर झुका लो/ क्योंकि असली अपराधी का / नाम लेने के लिए कविता, सिर्फ उतनी देर तक सुरक्षित है / जितनी देर कीमा होने से पहले / कसाई के ठीहे और तनी हुई गंडास के बीच / बोटी सुरक्षित है।"[2]

समकालीन साहित्य में नये-नये विमर्शों पर लिखा जा रहा है। स्त्री और दलित विमर्श के कारण इन वर्गों की समस्याओं, पीड़ाओं और अस्मिता पर पर्याप्त लेखन हुआ है। स्त्री और दलित नाम से पूरा साहित्य का एक वर्ग ही बन गया है। स्त्री और दलित पहले शोषित-पीड़ित रहे, उपेक्षित रहे, वे साहित्य में मुख्य भूमिका में आ गये। इसे उत्तर-आधुनिकता का एक प्रभाव भी माना जाता है। "उत्तर आधुनिकतावाद हर तरह के केन्द्रवाद' या सेंट्रिज्म को तोड़ता है और विकेन्द्रीयता के महत्त्व की प्रतिष्ठा करता है और केन्द्र से परिधि की ओर चल पड़ता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि दलित, जनजातियों, नारी समाज, समलैंगिक, स्त्री-पुरुष, हाशिए पर स्थित लोग, दमित-प्रताड़ित, परिधि पर स्थित जातियाँ, विरोधी विचार, हर प्रकार के झटके, अटके थमे वे लोग, जिनकी पहचान या आवाज नहीं थी और जिन्हें अभिजात्यवादी, वर्चस्ववादी, अगड़ी जातियों वर्गों ने समाज की भागीदारी से बाहर या वंचित रखा था। साथ ही जिन्हें सांस्कृतिक संवाद से दूर रखा गया था, अब पावर शिफ्ट के युग में अपनी पहचान, अपनी आवाज, अपने वर्चस्व के नए समूह बनकर जी-तोड़ संघर्ष करने लगे।"[3]

इसी उत्तर आधुनिकतावादी विकेन्द्रीयता ने उपेक्षित या अप्रचलित विषयों पर संवाद या विमर्श होने लगा। स्त्री, दलित, आदिवासी, पर्यावरण विमर्श के बाद अब हिन्दी साहित्य में नये विमर्श सामने आने लगे हैं। वृद्ध, विकलांग तथा तृतीय लिंगीं आदि विमर्श इन दिनों चर्चा में हैं।

भूमंडलीकरण के प्रभाव से हम ऐसे सांस्कृतिक युग में पहुंच गए हैं कि हम न तो पुरातन को पूरी तरह छोड़ पा रहे हैं और न ही नये को पूर्णतः स्वीकार कर पाए हैं। इसलिए मूल्य बहुत बुरी तरह से प्रभावित हो रहे हैं। संक्रमण की इस दशा ने हर संस्था को दुष्प्रभावित किया है। 'परिवार' नामक संस्था सबसे अधिक प्रभावित हुई है और नष्ट हुई है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वृद्धों की स्थिति बहुत सम्मानजनक रही है। वे सदैव घर के मुखिया, संचालक और समन्वय की भूमिका में रहे हैं। पाश्चात्य मूल्यों को अपनाने, भौतिकता के प्रभावस्वरूप

एकाकी परिवार हो जाने से वृद्ध बोझ बनकर रह गए हैं। इसलिए वृद्धावस्था एक अभिशाप जैसी स्थिति बनकर रह गई है। जब मनुष्य अपने आप को वृद्ध मानने लगता है तो वह कमजोर महसूस करता है। धीरे-धीरे वह अपना अस्तित्व खतरे में समझने लगता है।

वृद्धों की यही चिंता हिंदी साहित्य में 'वृद्ध विमर्श' के रूप में उद्घाटित हो रही है। हिंदी कहानियों में प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी', उषा प्रियंवदा की 'वापसी', सुषमा बेदी की 'झाड़', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'यादें', कृष्णा अग्निहोत्री की 'यह क्या जगह है दोस्तो', निर्मल वर्मा की 'जाल', मोहन राकेश का 'मलबे का मालिक' तरुण भटनागर का 'फोटो का सच', निर्मल वर्मा की 'बीच बहस', राधेश्याम की 'पेंशन' आदि कहानियों में वृद्धों की अवमूल्यित स्थिति का चित्रण अनेक संदर्भों में मिलता है।

इनके अलावा सुशमा बेदी की 'सड़क की लय', मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेत कामना', शर्मिला बोहरा जालन की 'ईमेल', गिरीश पंकज की 'व्ही. आर. एस.', मृणाल पांडे की 'धूप छांह', 'कैंसर', उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले करधन', गीतांजलि श्री की 'इति', डॉ. नीरज माधव की 'बिजूका' आदि कहानियों में वृद्ध जीवन की दशाओं का बेबाकी से चित्रण मिलता है।

हिंदी उपन्यासों में चित्रा मुद्गल का 'गिलीगडू', ममता कालिया का 'दौड़', काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घु', पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव', रवींद्र वर्मा का 'आखिरी मंजिल', हृदयेश का 'चार दरवेश, रमेश चंद्र शाह का 'सफेद परदे', 'कथा सनातन', निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य' जैसे उपन्यास वृद्धावस्था के कथ्य पर बेहतरीन उपन्यास हैं।

वृद्ध विमर्श में वृद्धों के सम्मान की बात उठाई गई है। हमारे शास्त्रों में भी बुजुर्गों के आदर और सम्मान की बात कही गई है। यजुर्वेद में भी ऐसा उदाहरण मिलता है-

यदापि पोश मातरं पुत्रः प्रभुदितो धयान्।

इतदगे अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ ममां॥[4]

हिंदी कविता में भी कवियों ने इस विषय को छुआ है। वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या पर चिंता व्यक्त करते हुए रामधारी सिंह दिनकर अपने कविता में लिखते हैं-

"जो जवानी में नहीं रोया उसे बर्बर कहो

जो बुढापे में न हँसता है, मनुज वह मूर्ख है

जब मैं था नवयुवक वृद्ध शिक्षक थे मेरे

भूतकाल की कथा गूढ बदलते थे वे

मैं पढने को नहीं वृद्ध होने जाता था,

आग बुझाकर शीतल मुझे बनाते थे वे

पर अब मैं बूढा हूँ, शिक्षक नौजवान है

उन्हें देख निज सोयी वही जगाता हूँ मैं

भूत नहीं अब परिचय पाने को भविष्य का

यौवन के विद्यामंदिर में जाता हूँ मैं।"[5]

बाल्यावस्था में माता-पिता बच्चों का विशेष ध्यान रखते हैं। युवावस्था में उनके सारे सपनों का पूरा करने का प्रयास करते हैं लेकिन वही बच्चे बड़े होकर अपने माता-पिता की इज्जत नहीं करते। कवि कुमारेंद्र वृद्धावस्था को अपनी कविता में कहते हैं-

"कल तलक जो थाम कर चले थे

उंगली हमारी,

आज वो ही उंगली दिखा रहे हैं।"[6]

मनुष्य समूह से रहनेवाला प्राणी है। वह ज्यादा देर तक अकेला नहीं रह सकता है। एकाकीपन उसे कमजोर बना देता है। बढ़ती उम्र के कारण वृद्ध लोगों से युवावर्ग दूर होने लगता है। बुजुर्गों को केवल पिछली यादों के सहारे ही जीवन जीना पडता है। वे अपना अनुभव अपने बच्चों में बाँटना चाहते हैं। लेकिन बच्चों के पास इसके लिए फुरसत नहीं है। आज की हिंदी कविता में बुजुर्गों के एकाकीपन के ऊपर कविताएँ लिखी जाने लगी हैं। महेश्वरी कणेरी 'हमारे बुजुर्ग' कविता में कहती हैं-

"बहुत कुछ कहने का मन करता है।

पर सुनने वाला कोई नहीं

नितांत अकेला खालीपन लिये

सफर बोझिल सा लगता है।"[7]

जय प्रकाश कर्दम की 'कलिया की मौत' कविता में बूढ़ी माँ को अशिक्षित एवं बैकवर्ड कहकर बेटा अपने साथ ले जाने में असमर्थता दिखता है। इसका चित्रण इस प्रकार किया गया है-

"मेरी कुछ मजबूरियां है, माँ समझती क्यों नहीं

साथ तो ले चलूं लेकिन रखूँ तुझको कहां।

ऊंची ऊंची जातियों के लोग रहते है वहाँ

सभ्य शिक्षित हाय जेन्टरी लोग सब फॉरवर्ड हैं

लेकिन माँ तू तो निरी अशिक्षित और बॅकवर्ड है।"[8]

आज हमारा समाज किस ओर जा रहा है, यह विषय चिंतनीय है? युवा पीढ़ी को माता-पिता भार क्यों लगे लगे हैं? गली-गली में आज वृद्धाश्रम खुल रहे हैं, क्या यही हमारे समाज की प्रगति है? हम अपने करियर, तरक्की और बच्चों के अलावा किसी दूसरी ओर नहीं देख रहे हैं? जिन माता-पिता ने हमें हाथ थाम चलना सिखाया, जब उनके पैर डगमगाने लगे, उन्हें सहारा देने के बजाय उनसे किनारा कर लिया। सिमोन दी बाउवार का कथन है-

"समाज में जब व्यक्ति का योगदान रहा, तब तक वह समाज का अभिन्न अंग बना रहा और जैसे ही बूढा हो गया, वह समाज से कट गया और केवल 'एक वस्तु' बनकर रह गया। ऐसी वस्तु जिसका न कोई मोल है और न किसी काम का है और न ही कुछ पैदा कर सकने योग्य।"[9]

हिन्दी साहित्य बुजुर्गों की समस्याओं को अपना विषय बनाकर अनेक रचनाएँ तैयार कर रहा है। समस्याएं बढ़ती जा रही हैं, घटने का नाम नहीं ले रहीं हैं। वृद्धाश्रमों की स्थापना इसी का परिणाम हैं। आदमी का अनुपयोगी हो जाना ही वृद्धावस्था की सबसे बड़ी कठिनाई है। अनुपयोगिता का एहसास होते ही व्यक्ति के गतिशील जीवन में रुकावट-सी आ जाती हैं। मान-सम्मान, प्रेम-आदर में कटौती महसूस होने लगती है। उसकी मनःस्थिति में अनायास ही बदलाव आ जाता हैं। समय काटने हेतु विविध आयामों को ढूँढना पड़ता हैं। शारीरिक कमजोरी की वजह से वह अपने को मानसिक रूप से भी कमजोर समझने लग जाता हैं। पीढ़ी का अंतर बताकर जब घर-परिवार के सदस्य उसकी बात को नकारने लगते हैं, तब अनुपयोगिता का एहसास ओर गहरा हो जाता हैं। जीवनानुभावों का, विचारधाराओं का जब अनादर होने लगता हैं तो वह बुजुर्ग अपने को समाज की एक व्यर्थ इकाई समझने लगता हैं और तब उसकी समस्या हल होने के बजाय अधिक विकट रूप धारण करती हैं। हिंदी साहित्य में वृद्धों की समस्याओं को 'वृद्ध विमर्श' के रूप में उठाया जा रहा है।

इन दिनों विकलांग विमर्श हिन्दी साहित्य में पुरजोर दस्तक देने लगा है। दलित और स्त्री विमर्शो ने जो इन वर्गों में अभ्युत्थान करने का सराहनीय कार्य किया है। इसी से प्रेरणा पाकर भारत के निःशक्त जनों में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता भरने के उद्देश्य से विकलांग विमर्श उत्पन्न किया जा रहा है। विकलांगता दलित एवं स्त्री समस्या से भी अधिक भयावह है। यह किसी वर्ग, जाति से परहेज नहीं करती। विकलांगता चाहे शारीरिक हो या मानसिक, यह व्यक्ति के मन में हीनता और निराशा भर देती है। व्यक्ति अपने को बोझ समझकर समाज, ईश्वर एवं खुद को कोसता रहता है।

विकलांग विमर्श निःशक्तों में नयी ऊर्जा भरने का कार्य कर रहा है। पौराणिक पात्र अष्टावक्र, शुक्राचार्य, दीर्घतमा से; ऐतिहासिक पात्रों रणजीत सिंह, राणा सांगा, तैमूर लंग आदि से; विदेशी प्रतिभाओं होमर, मिल्टन, बायरन, हेलन केलर, थामस अल्वा, एडीसन लुईब्रेल, स्टीफन हॉकिन्स आदि से एवं हिन्दी साहित्य के जायसी, सूरदास, राजेन्द्र यादव से विकलांग प्रेरणा ले सकते हैं। इन पात्रों ने विकलांगता के बावजूद उपलब्धियों प्राप्त की हैं।

समकालीन हिन्दी साहित्य विकलांगों में आत्मविश्वास भरने का प्रयास कर रहा है। गिरीश पंकज लिखते हैं- "क्या हुआ जो आँख से वो देख न पाता / दिव्य दृष्टि से नज़र सब उसको आता है से लाचार है जो पैर से कमजोर / दौड़ जीवन की मगर वह जीत जाता है / बोल न पाये जो सुन भी ना पाये / ध्यान से सुनना वह अक्सर गुनगुनाता है।"

विकलांग चेतना का साहित्य समाज के प्रति विकलांगों के आक्रोश एवं विरोध को भी दर्शाता है। समाज ने भी विकलांगों को खराब नजर से देखा है। इन्हें या तो विकलांगता सूचित करने वाले विशेषणों से पुकारा या बेचारा कहा। हिन्दी साहित्य में विकलांगों के प्रति यही

करुणा मिलती है। निराला जी लिखते हैं-

माँ उसको कहती है रानी / आदर से जैसा है नाम / लेकिन उसका उल्टा रूप / चेचक के दाग, काली, नकचिप्टी / गंजा सिर, एक आंख कानी / औरत की जात रानी, ब्याह भला कैसे हो / कानी जो है वह, सुनकर कानी का दिल हिल गया / काँपे कुछ अंग, दांई आँख से / आंसू भी बह चले माँ के दुःख से।"[10]

अक्सर देखा गया है कि यदि किसी का कोई अंग कमजोर या बेकार रह जाता है तो उसका कोई दूसरा अंग सामान्य से अधिक शक्तिशाली होता है। प्रकृति की इस देन को पहचानकर विकलांगों को नये क्षितिज तलाशने होंगे। विकलांगों की इस कोशिश में कवि समाज को सहभागी बनने का आह्वान करता है -

"रे दूर / करो संस्कृति / नवीन के दुःखद पक्ष / मानव समाज की छाती पर / जो रंग रहे बन यक्ष प्रश्न / करो उनके सपने साकार/ बनो जीवन नैया के पतवार / समाज- सरकार रखे सरोकार / करें मिल-जुल सहकार करें दुःख विहीन जीवन।"[11]

कवि यह भी मानता है कि केवल दया और सहानुभूति दिखाने से ही विकलांगों का भला नहीं हो सकता है। उनमें कुछ कर सकने की क्षमता की चेतना भरनी है-

"अब और नहीं चलना है / आज / आज नहीं हो कल / कल नहीं हो तो परसों / शब्दों में हमें / विकलांग चेतना/ भरनी है।"[12]

विकलांग विमर्श के अन्तर्गत हिन्दी में कविता कहानी एवं लघुकथाएँ रची जा रही हैं। इनके माध्यम से समय की मांग समझकर विकलांग चेतना की आवाज उठायी जा रही है। समाज निशक्तों का सहयोगी बने तथा निःशक्त आत्मविश्वास के साथ सशक्तता की राह में बढ़ेंगे, यह भावना भरने में साहित्य अग्रसर हुआ है।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में तृतीय लिंगीं एकदम नया विषय है, अर्थात 'किन्नर विमर्श' साहित्य में हाल ही में शामिल हुआ है। 'किन्नर' का अर्थ होता है- तृतीय पंथी लोग। अर्थात् न तो ये पुरूष वर्ग में आते हैं और न ही स्त्री वर्ग में। यह ईश्वर की बनाई हुई कृति है- जिसे आधी कृति भी कहा जा सकता है। किन्नरों को समाज हिजड़ा, तृतीयलिंगी, छक्का, पावैया, माँगा उभयलिंगी, शिखंडी, ख्वाजासरा आदि नामों से भी पुकारता है।

हिमाचल के किन्नोर निवासियों के लिए किन्नर का प्रयोग होता था, अब यह हिजड़ा के लिए प्रयोग होने लगा है। जब कभी किसी परिवार में खुशी का जन्मोत्सव का प्रसंग होता है तो किन्नर आकर, बधाइयाँ गाकर, आशीर्वाद देकर, कुछ रुपए लेकर चले जाते है। फिर हम उन्हें भूल जाते है। कोई भी उनके विषय में नहीं सोचता कि उनकी समस्याएँ क्या है? क्यों वे भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति के लिए विवश हैं? विश्व के सभी समाजों में स्त्री और पुरुषों के अतिरिक्त एक और समाज किन्नरों का भी हैं, जिनका इतिहास 4000 वर्ष पुराना है। धर्म और पुराणों ने भी जिसे स्वीकारा है। उनकी दुनिया एक विशेष दुनिया है। मानव के रूप में जन्म लेने के बाद भी वे अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य हैं।

भारत में कुछ प्रसिद्ध व्यक्तित्वों ने थर्ड जेंडर होकर भी समाज की समस्याओं से लड़कर एक स्थान कायम किया। वर्तमान में लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी (महामंडलेश्वर), काल्कि सुब्रम्हण्यम, मानवी वंद्योपाध्याय, ए. रेवती, विद्या, पायल सिंह, शबनम मौसी, गौरी सावंत, सलोनी, मनीषा महंत जैसी समाज के अनेक प्रसिद्ध प्रतिनिधि हैं, जिनकी राजनीति, समाज, साहित्य एवं कला जैसे क्षेत्रों में अलग-सी पहचान निर्माण हुई है। इनके अपने जीवन संघर्ष के व्यापक अनुभव हैं। इन्हीं के अनुभवों से न जाने कितने किन्नरों को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली है!

वर्तमान युग के अनेक हिंदी साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं में इस वर्ग के जीवन का चित्रण पूरी ईमानदारी और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के लिखते हैं-

"थर्ड जेन्डर को केंद्र मे रखकर लिखे गए अनेक साहित्यिक कृतियों के साहित्यकारों ने हिजड़ा समुदाय के दुःख-दर्द, अपमान, उपेक्षा, शोषण और जीवन की कटु सच्चाई को बिना किसी रंग-रोगन, लाग-लपेट और काल्पनिकता के, संवेदना और करूणा के, विशद् पाट पर चित्रित कर उनकी व्यथा-कथा से पाठकों-समाज को परिचित ही नहीं कराया, अपितु उनके प्रतिरोध को वाणी भी दी। उन्हें उनकी अस्मिता से परिचित कराया और समाज में उनके जीने लायक सम्मान और अधिकारों की बहाली का प्रश्न उठाया है। एक नयी सामाजिक चेतना से प्रेरित होकर साहित्यकारों ने हिजड़ों के जीवन यथार्थ को नये सिरे से पहचाना और उनके जीवन में आये परिवर्तन को बड़ी संजीदगी से अपनी रचनाओ में उभारा है। बडी निर्भीकता और बेबाकी से कई रचनाकारों ने कविताएँ और कथाकृतियाँ रची है।"[13]

हिंदी कथा साहित्य में किन्नरों का स्थान न के बराबर है। फिर भी वर्तमान में उपन्यासों और कहानियों में इन पर चिंतन हो रहा है। हिंदी कथा साहित्य में किन्नरों पर नीरजा माधव कृत 'यमदीप' (2002), प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' (2011), महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' (2011), निर्मला भुडारिया कृत 'गुलाम मंडी' (2015) और चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203, नालासोपारा (2017), अनुसूइया त्यागी कृत 'मैं भी औरत हूं', भगवंत अनमोल कृत 'जिंदगी 50-50' आदि रचनाएं मिलती है।।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं लक्ष्मी, मैं हिजड़ा' इस दिशा में' बहुत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इनके अलावा हिंदी में शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, चित्रा मुद्गल, वीना वर्मा, बलजीत सिंह रैना, एस. बलवंत, हरीश बी. शर्मा, श्रीकृष्ण सैनी, चॉद दीपिका, पूनम पाठक, डॉ. पद्मा शर्मा जैसे अनेक रचनाकार थर्ड जेन्डर वर्ग के लोगों का दुःख, दर्द, पीड़ा-वेदना को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त कर रहे हैं। कवयित्री गीतिका वेदिका लिखती हैं -

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
नहीं नारी हूँ मैं और नर नहीं हूँ।
विवश हूँ मूक हूँ पत्थर नहीं हूँ
जिसे मौका मिला उसने सताया
सभी ने रक्त के आँसू रुलाया
अधूरी देह क्यों मुझको बनाया।"[14]

परिवार के सदस्य उन्हें पास रखना नहीं चाहते और अगर चाहते हैं तो भी समाज उसमें रूकावट बनता है। अंधा, बहरा, मनोरोगी या अन्य कोई अपंग व्यक्ति परिवार में सहज रह सकता है, बस नहीं रह सकते तो सिर्फ किन्नर। इस विवशता के बारे में अपनी माँ के प्रति एक किन्नर की पुकार देखिए-

"लज्जा का विषय क्यों हूँ अम्मा मेरी
अंधा, बहरा या मनोरोगी तो नहीं था मैं।
सारे स्वीकार हैं परिवार समाज में सहज,
मैं ही बस ममतामय गोद से बिछड़ा हूँ।"[15]

इंसानियत के नाते थोड़ा-सा सोचे। औरों की तरह शिक्षा और रोजगार के अवसरों से किन्नर ही क्यों वंचित हैं, औरों की तरह ही प्यार और सम्मान के साथ वे इसी समाज का हिस्सा क्यों नहीं बन सकते हैं? पूनम सिन्हा लिखती हैं -

"फिर क्यों रहे सभी अधिकारों से वंचित
सोचना जरा हमारे बारे में
क्यों नहीं मिले शिक्षा और रोजगार का अवसर
क्यों नहीं इसी समाज का हिस्सा बने
प्यार और सम्मान के साथ।"[16]

कह सकते हैं कि साहित्य में अन्य विमर्शों की तरह किन्नर विमर्श को गंभीरता से लेते हुए उसके संबंधित विभिन्न आयामों पर गौर करना जरूरी है। समाज द्वारा उपेक्षित एवं हाशिए पर रखे गए इस समुदाय की पीड़ा, उनके दुःख-दर्द, दयनीय स्थिति समाज के सम्मुख लाने हेतु एवं उनके सुधार व अधिकारों की जागृति हेतु साहित्य की भूमिका अपरिहार्य है। थर्ड जेंडर के रूप में उन्हें कानूनी अधिकार तो प्राप्त हो गया, लेकिन खुद उनकी इसके प्रति की सजगता एवं समाज के इनके तरफ देखने के नजरिए में बदलाव लाने हेतु और भी प्रयास होने आवश्यक हैं।

कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श अपरिपक्व और पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है। समाज की विचारधारा अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन विकसित और उदार हो रहे समाज ने थोड़ा स्पेस देना शुरू किया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान समय विमर्शों के उद्घाटन का है। हिन्दी साहित्य में नित नये विमर्श खड़े किए जा रहे हैं। विमर्शों से किसी के पक्ष में वातावरण बनाने में सफलता

मिलती है। समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री और दलित विमर्श के बाद वृद्ध, विकलांग एवं तृतीय लिंगीं विमर्श के नये स्पेस खुले हैं। इन वर्गों की समस्याओं का साहित्य में चित्रण हो रहा है जिससे इस वर्ग के लोगों आगे बढ़ने के लिए ऊर्जा मिल सकेगी। इसके साथ समाज के अन्य वर्ग सहयोगी की भूमिका में साथ आ सकेंगे।

इन विषयों पर चल रही लेखनी से हिन्दी साहित्य तो समृद्ध होगा ही, वृद्ध, विकलांगों, तृतीय लिंग आदि के पक्ष में हवा बन रही है। अतः इस दिशा में बढ़ते हिन्दी के नये विमर्श प्रासंगिक हैं।

REFERENCES

1. नरेन्द्र- कविता, वागर्थ, अंक 162,पृष्ठ 45
2. हुकुमचंद राजपाल आधुनिक हिन्दी काव्य संग्रह, पृष्ठ-130
3. कृष्णदत्त पालीवाल-उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008 ई. पृष्ठ 21
4. सं. डॉ. एस. वाय. होनगेकर - 21वीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, एबीएस पब्लिकेशन, वाराणसी, 2018, पृष्ठ 250
5. रामधारी सिंह दिनकर - जवानी और बुढ़ापा, सं. डॉ. एस. वाय. होनगेकर - 21वीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, एबीएस पब्लिकेशन, वाराणसी, 2018, पृष्ठ 243
6. kavita-sangrha.blogspot.in/2009/04/blog-post_08.html
7. kaneriabhivainjana.blogspot.in/2012/08/blog-post_19.html
8. जयप्रकाश कर्दम - गूंगा नहीं था मैं, पृष्ठ 46
9. सं. डॉ. एस. वाय. होनगेकर - 21वीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, एबीएस पब्लिकेशन, वाराणसी, 2018, पृष्ठ 306
10. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला - नये पत्ते रानी और कानी, पृष्ठ 16
11. जयप्रकाश नारायण - निःशक्त चेतना, पृष्ठ-190
12. डॉ. इन्द्रबहादुर सिंह - अपना दिनमान, पृष्ठ-61
13. आनंद प्रकाश त्रिपाठी - वाङ्मय, जुलाई-दिसंबर 2017, पृष्ठ 106
14. गीतिका वेदिका, सं. डॉ. दिलीप मेहरा, हिंदी कथा साहित्य में किन्नर समाज, माया प्रकाशन, कानपुर 2018, पृष्ठ 149
15. http://shabdmitra-blogspot-in/2011/06/blog&post&4197-html
16. पूनम सिन्हा - थर्ड जेंडर, काव्यकोश, www.kavyakosh.com, 18 Aug, 2016